लौहित्य साहित्य सेतु : सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित अर्धवार्षिक द्विभाषिक ई-पत्रिका
वर्ष: 1, संख्या: 1; जुलाई-दिसंबर, 2020

इग्लू

मूल (असमीया) : श्रीमती मणिका देवी*
अनुवाद: पूजा शर्मा

माँ, तू चल बसी क्या ?

अभी भी कुछ बाकी है क्या बिटिया, हड्डियाँ तो कब की गल गयीं।

क्या कहती हो माँ ! मेरे पास ख़बर भेजने को भी कोई मिला नहीं था क्या ?

बिटिया तू ख़बर भेजने की बात कर रही है, मुझ ही को ख़बर कहाँ मिली थी । जीने-मरने के बीच का अन्तर ही कहाँ जान सकी थी । सावधानी से चलना बिटिया, स्त्रियों के जीने-मरने में कोई अन्तर नहीं, कोई भी अन्तर नहीं।

सुना था मरे हुए के हाथ-पैर ठण्डे हो जाते हैं; कान-छेद का भाग नीचे झुक जाता है। तेरी देह क्या ठण्डी हो रही थी ?

मेरी देह तो हमेशा ठण्डी ही है। बाहर ठंडक भी तो कम नहीं। उस पर इधर यह हिमपात ! इस हालत में शरीर गर्म रहे तो कैसे ? उस दिन भी सुबह से ही बर्फ गिर रही थी। राशन की दुकान को गए तेरे पिताजी के एरी चद्दर पर, बंदर-टोपी पर, भरभर कर चिपक गए थे बर्फ के महीन टुकड़े । रसोईघर की खिड़की से देखा था मैंने, सामने की सड़क से, घुटनों तक आयी बर्फ को धकेलते हुए तेरे पिताजी चल रहे हैं।

माँ तू क्या कहती है, तू तो हमारे मूल घर में थी - पिताजी और भैया-भाभी के संग। वहाँ कहाँ बर्फ गिर सकती है ? हिमपात तो विदेशों में होता है माँ, विदेशों में गिरती है बर्फ।

तो क्या बर्फ विदेशों में गिरती है ? तब शायद वह विदेश ही था फिर। सचमुच, वहाँ बर्फ गिर रही थी। दिन-रात बस बर्फ ही गिर रही थी वहाँ। सांझ को एक सफ़ेद ढेर के नीचे किसी प्रकार तुलसी का पौधा खड़ा था। दीया रखने की भी जगह नहीं थी। मैंने तुलसी के नीचे की बर्फ हटा ली थी। उसके बाद जाके दीया जला था। ये सब बातें बिटिया क्या मैं झूठ-मूठ बोलूंगी भला ? मुझे अब भी सब कुछ याद है। उस दिन की भी सारी बातें मुझे शीशे की तरह स्पष्ट याद हैं – देख, तेरे पिताजी उधर निकल गए। अपनी चीज़ों का बिल्कुल अच्छे से रखरखाव करने वाले, साफ-सफाई-पसन्द वे एक हल्की हवाई चप्पल पहनकर ही बर्फ की उस खाई को लाँघ गए। पुराना जूता कब का फटा पड़ा है, नया जूता खरीदने

को ही रह गया। खिड़की के आईने से ही मैं देर तक तेरे पिताजी को देखती रही। एक समय के बाद वे ओझल हो गए। रण का ऑफिस खुला था, पोती का स्कूल भी। फटाफट मैंने उन दोनों के लिए खाना परोसा। उसके बाद जाने कैसे मैं बिस्तर को आ गयी; मेरी आँखें बन्द हो आयीं। जब बहू ख़बर लेने को आयी, तब अचानक होश आया मुझे- माँ, कहाँ हो तुम माँ ? मैं बिस्तर से उठ आना चाहती, पर यह क्या मेरा शरीर हिलदुल ही नहीं रहा। बहू को आवाज़ देकर अपने होने का आभास देती, पर यह क्या अपनी जीभ का ही मुझे पता नहीं। यह क्या हो गया ? मेरा हाथ छू कुछ पल रुककर नब्ज़ देख बहू कह उठी- माँ, तो चल बसी।

भाभी के कहने से ही होगा क्या, माँ। तू वह सब कुछ मत सोचना। कुछ समय यूँही चुपचाप सोयी रह। मुझे ही कुछ करना होगा। तेरे जमाई जी को फिर से एक बार कहकर देखूँगी- रो-बिलख कर विनती कर देखूँगी। कुछ दिनों के लिए तुझे लाकर यहाँ अगर रख पाऊँ- यहाँ एक बड़े अच्छे डॉक्टर साहब हैं, बिल्कुल हमारे घर के ही पास।

तू भी न बिटिया क्या बोल रही है। तेरी बातें अभी भी जरा-सी न बदली। दो बच्चों की माँ बन गयी, पर अब भी वह पहले जैसी बच्ची ही बनी हुई है। कहाँ सुना तूने कि डॉक्टर को दिखाने से मरा हुआ आदमी ज़िन्दा हो उठ बैठता है ! हँसा ही दिया तूने बिटिया। तेरी बातें सुनकर दिल खोलकर हँस लिया आज मैंने- जैसे कोई किस्सा ही सुन लिया, सोने की एक शय्या पर कोई राजकुमारी जी उठी हो- बचपन का सुना कोई किस्सा !

मैं जब छोटी थी माँ, तू बड़ी लम्बी लगती थी मुझे। आह ! गर्दन ऊँचा कर-कर तेरे चेहरे की ओर मैं देखा करती थी। जब तू हँसती थी बहुत अच्छा लगता था। नाम-कीर्तन करते हुए तू बड़ी अच्छी लगती थी- जैसे दूर से ही धीमी-धीमी तेरी आवाज़ सुनी थी। कितनी लम्बी थी तू माँ ! सोचती थी कब जाकर तुझे छू पाऊँगी, तेरे बराबर की हो जाऊँगी।

वह सारी बातें रहने दे बिटिया। जानती तो है, शरीर की लम्बाई छोटी बात है, बिल्कुल छोटी बात- नहीं तो, बिस्तर के एक कोने में क्या सिकुड़-सिमटकर रह जाता मेरा छोटा-नाता शव !

विनती करती हूँ, माँ। ऐसी बात फिर न कभी कहना। शव नहीं बन चुकी है तू। अभी भी तू ज़िन्दा है।

अगर ज़िन्दा हूँ ही मैं तो फिर क्यों मुझे यह अजीब-सी गन्ध मिल रही है ? समझ गयी हूँ मैं- इसीलिए ही तो जीना और मरना अलग-अलग है, दोनों ही की गन्ध भिन्न-भिन्न है।

तो मृत्यु का अर्थ है अजीब-सी गन्ध, तो मृत्यु क्या जंगली-सी गन्ध है ? माँ, तू लौट आ। लौटने की राह रंगीन है, राह का अन्त रस-भरा है।

मुझे तो यह जंगली-सी गन्ध ही भा रही है। बर्फ की यह शय्या आरामदेह है, बड़ी आरामदेह।

ठीक है माँ, तू बर्फ में ही गड़ती रह। फिर बर्फ भी तो पिघलती है। गलते बर्फ के पानी में सबकुछ बह जाए तो ?

'करच' वृक्ष की जो डाल झुकी हुई है, वहीं अपना बसेरा बनाऊँगी।

वह जो राजाओं के जमाने का 'करच' वृक्ष। आंधी के द्वारा मसले जाने में कितना समय लगेगा भला ! राजा अगर नाम ले-लेकर पुकारे तो बड़ी परेशानी हो जाएगी तब – ओ काली, ओ गोरी ! बता, काटें कि न काटें ?

काटना नहीं।

न काटें कि काटें ?

काटना नहीं।

लो, यह दिया काट ..... तब ?

घर के पिछवारे लौकी बनकर जी उठूँगी, तालाब के मीठे जल में कमल बनकर खिलूँगी।

बता तो ज़रा माँ, किसके हाथों का स्पर्श पाकर तालाब का जल मीठा बनता है ? लौकी की बेल को किसके द्वारा बढ़ने का आसरा दिए जाने पर वह खूब फलने लगती है ? तालाब में काहु की खेती तू करेगी, लौकी के पौधे को आसरा तू देगी, तभी तो जाकर लगेंगे उनमें फल-फूल। तेरे न होने पर कहाँ होता है वह सब !

अच्छा याद दिलाया तूने बिटिया, रुक तो ज़रा, देख आऊँ उस तालाब को, देख आऊँ लौकी की उस बेल को। कितने दिन हो गए मेरे उस बगीचे की देखभाल किए हुए। समय ही नहीं मिला।

जा तो, जाकर देख तो आ माँ, अब तो 'करच' वृक्ष की वह झुकी हुई डाली, विपत्तिभरा हिमपात और वह अजीब-सी जंगली गन्ध, वहाँ कुछ भी तो नहीं। है न माँ, सब कुछ मुक्त हो गया है और एक बहुत ही प्यारे गीत का स्वर तेरे होठों पर प्राण पा उठा है। माँ, यहाँ से, इतनी दूर से, बस किसी प्रकार तेरी ठण्डी-सी आवाज़ सुन पा रही हूँ। ज़रा-सा ऊँचा तो गा माँ। तेरी आवाज़ केले के पत्ते के अग्रभाग की तरह मेरे इस ज्वर-चेचक से आक्रांत शरीर को धीरे-से लपेट ले। गा तो ज़रा माँ, सभी सुन पाए ऐसे स्वर में गा जीवन जिलाने वाले गीत।

संपर्क-सूत्र:

मनिका देवी
गुवाहाटी
ई-मेइल: manikadevee.ghy@gmail.com
मोबाइल:9706303566

पूजा शर्मा
शोधार्थी, हिंदी विभाग,गौहाटी विश्वविद्यालय
ई-मेइल: poojasarma2015@gmail.com
मोबाइल: 8638964510